

## वर्तमान संक्रान्ति में भारतीय इतिहास लेखन का विभ्रम : भावी दिशाये

- प्रो० ओम प्रकाश

भारतीय इतिहास लेखन आधुनिक युग में अपने प्रारम्भ के पूर्व से ही समस्याजनक रहा है। मुख्य समस्या संसाधनों का अभाव एवं अपर्याप्तता की रही है। यद्यपि साहित्यिक ग्रन्थों की कोई कमी भारत में कभी भी नहीं रही है लेकिन ऐसे ग्रन्थों की कमी बराबर महसूस की जाती रही है जिन्हें क्रॉनिकल, बहियों और दरबारी अभिलेखागार की कोटि में रखा जा सके और जिनमें प्रदत्त सूचनाओं के आधार पर विश्वसनीय इतिहास लेखन किया जा सके। क्रॉनिकल्स की उपलब्धता 8वीं शताब्दी में राजतरंगिणी नामक ग्रन्थ से प्रारम्भ होती है और मध्यकालीन इतिहास तक जाती है। आधुनिक इतिहास के क्षेत्र में अभिलेखागार में संरक्षित सामग्री की कोई कमी नहीं है, प्रश्न इतिहास लेखन के दृष्टिकोण का है।

इतिहास लेखन की सर्वप्रथम आवश्यकता भारत के औपनिवेशिक शासकों को पड़ी जिन्हें अपनी शक्ति को सत्ता में बदलने की बहुत बड़ी चुनौती का सामना करना था। उन्हें यह देखकर निराशा हुई कि मध्यकालीन भारतीय इतिहास की साख और धरोहर ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद भी इस सीमा तक बनी हुई थी कि कम्पनी को शाह आलम को दीवान के रूप में सत्तारूढ़ बनाए रखना पड़ा। उसे कैसे पृष्ठभूमि में ढकेलकर ब्रिटिश ताकत को भारतीय जनमानस द्वारा स्वीकार्य सत्ता का चोला पहनाया जा सकता है यह उसकी चिन्ता का मूल विषय था। भारत के प्राचीन साहित्य से उनको कुछ खास मदद मिलने वाली नहीं थी क्योंकि भारतीय इतिहास के प्राचीन खण्ड का जनमानस ऐतिहासिक परिवर्तनों की तथ्यपरक रूपरेखा में विश्वास करने के बजाय धार्मिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक और अस्तित्ववादी जनश्रुतियों और कथाओं तथा प्रवचनों द्वारा की गयी विवेचनाओं में अपेक्षाकृत अधिक रुचि रखता था और इन्हीं के संरक्षण में दत्तचित्त था। भारत में अपनी शक्ति को सत्ता में बदलने के लिए कृतसंकल्प औपनिवेशिक इतिहासकारों ने प्राचीन भारतीय इतिहास के संसाधनों के रूप में भाषावैज्ञानिक, पुरातात्विक, अभिलेखीय तथा कलात्मक और स्मारक स्रोतों के कालिक, घटनापरक और संकल्पनात्मक विश्लेषण को इतिहास लेखन का आधार बनाया। उन्होंने साहित्यिक रिकार्ड के स्थान पर 'लिथिक' रिकार्ड को मान्यता दी जो उन्हें अभिलेखों के माध्यम से प्राप्त होने वाली सूचनाओं के रूप में या स्तूपों, मंदिरों, किलों के माध्यम से प्राप्त होने वाली सूचनाओं के रूप में उपलब्ध हुए। स्तूपों, मंदिरों, किलों, गुफाओं जैसे स्थापत्य तथा उनकी मूर्तिकला उत्कीर्ण कला के रूप में उपस्थित थे या खोजकर निकाले गये। राजनीतिक इतिहास की सूचनाओं के अभाव में उन्होंने ऐतिहासिक पुरातत्व की पात्र परंपरा की संस्कृतियों से विलुप्त इतिहास को भरने की कोशिश की। भाषा वैज्ञानिक तथा प्रजातीय संकल्पनाओं एवं तथाकथित वैज्ञानिकता के आधार पर उन्होंने विभिन्न क्षेत्रीय, भाषिक एवं धार्मिक आधार पर भारतीय जनसमस्याओं को उनके नैसर्गिक गुणों और उपलब्धियों से प्रेरित उनकी ऐतिहासिक कारगुजारियों में रूपायित करने की चेष्टा की। औपनिवेशिक शासन को उन्होंने भारत में पैक्सब्रिटैनिका स्थापित करने और उसके गौरवपूर्ण अतीत उनके समस्त क्षेत्रीय, जातीय, प्रजातीय एवं रंगभेदपरक विवरणों के साथ पहली बार खोजकर निकालने तथा गौरवपूर्ण सामयिक घटनाओं के संदर्भ प्रस्तुत करते हुए उनको संरक्षित करने का दावा किया जो सम्भवतः फिरोज तुगलक को छोड़कर कोई भी मध्यकालीन शासक नहीं कर सका था। वे केवल औपनिवेशिक भारत के ही नहीं उसकी प्राचीन धरोहरों की आत्मा के भी रहनुमा बन गये।

इसलिये अकबर जैसे अपवादों को छोड़कर मध्यकालीन शासकों की अपेक्षा ब्रिटिश शासन भारतीयों का ज्यादा घनिष्ठ मित्र और उनकी सांस्कृतिक विरासत का उद्धारक था। दूसरी तरफ ब्रिटिश शासन ने अपने राजनीतिक संघर्ष में माहिर देशी रियासतों के अनन्त युद्धों, टगी तथा लूटपाट के असुरक्षित माहौल को बदलकर उसमें ब्रिटिश शासन की सुरक्षा और गारंटी स्थापित करने का दावा किया। परम्परागत एवं सामंती अर्थव्यवस्था के स्थान पर आधुनिक पूंजीवादी व्यवस्था की स्थापना का श्रेय भी उन्होंने अपने को दिया। रेलसेवा, स्टीमर सेवा, वायुयान सेवा, डाकसेवा, चिकित्सकीय सेवा, शैक्षिक सेवा आदि का शुभारम्भ करने वाली सत्ता के रूप में

भी उन्होंने अपनी छवि को भारतीयों तथा विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया। उन्होंने ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता को भारत का उद्धारक, भारतीय सेना को विश्व के विभिन्न युद्धों में कीर्तिमान स्थापित करने वाली सेना के रूप में तथा अर्थव्यवस्था के उच्चतर आयाम छूने वाली अर्थव्यवस्था के रूप में प्रस्तुत किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि इतिहास लेखन का एजेण्डा इस दौर में ब्रिटिश ताकत को सत्ता में बदलने का एजेण्डा था और इन ऐतिहासिक एजेण्डों के माध्यम से उन्होंने भारतीय जनमानस पर अपनी पकड़ बनाने में सफलता पायी।

भारत को विदेशी शासन से मुक्त करने की पहल के रूप में उपस्थित द्वितीय संक्रान्ति के दौरान इतिहास लेखन की दूसरी विधा की तलाश प्रारम्भ हुई। इस बार इतिहास लेखन का एजेण्डा किसी इतिहासकार को नहीं दिया गया। यह एजेण्डा बंकिमचन्द्र चटर्जी नामक साहित्यकार द्वारा दिया गया। इसका विनिश्चय बहुत कुछ हीगेल और फिक्टे जैसे जर्मन विचारकों द्वारा प्रस्तुत Volksgeist (राष्ट्रीय जनचेतना) के अनुरूप राष्ट्रीय प्रतिभा में उन्मीलन की तर्ज पर किया गया। जहाँ जर्मन विचारकों ने यह कहा कि एंग्लो-फ्रेन्च राष्ट्रों की जनचेतना का उन्मीलन विश्व ने यदि उदारतावादी और लोकतंत्रीय आन्दोलन के रूप में देखा है तो जर्मन राष्ट्रीय जनचेतना का उन्मीलन विश्व को देखना अभी बाकी है। वह एक ऐतिहासिक भवितव्यता है और उभरकर ही रहेगी। एंग्लो-फ्रेन्च राष्ट्रीय जनचेतना की अभिव्यक्ति के अनुकूल अपना विकास करना या उसके प्रवाह को बढ़ा कर विश्वव्यापी बनाना जर्मन राष्ट्र की नियति नहीं है। इसी तर्ज पर बंकिम चन्द्र चटर्जी ने कहा था कि प्रत्येक कौम अपना इतिहास स्वयं लिखती है जिसमें वह अपनी राष्ट्रीय जनचेतना को व्यक्त करती है। भारतीय राष्ट्रीय जनचेतना को भी अपना इतिहास खुद लिखना होगा। औपनिवेशिक मनीषा द्वारा लिखा गया इतिहास भारतीय इतिहास नहीं हो सकता। यह मन्तव्य भारतीय राष्ट्रीय इतिहास लेखन की आधारशिला है जिसमें भारतीय संस्कृति की अद्वितीय पहचान को उभारने की चेष्टा करते हुए विविधता में एकता, सागर की तरह तल पर लहरों के उद्वेलन और गहराइयों में अन्तर्निहित शान्ति के विवेचनात्मक प्रतिमान, सांस्कृतिक दार्शनिकों एवं इतिहास लेखकों के माध्यम से सामने आये। इसी बीच उपयोगितावादिता के सुखवादी एवं उपयोगितावादी दर्शन के कायल औपनिवेशिक भारत के नौकरशाहों की भारतीय संस्कृति तथा भारतीयों की खुली हुई भर्त्सना तथा इवेन्जिलिकल पादरियों के बलात् धर्मपरिवर्तन के मंसूबों ने भारत में धार्मिक ध्रुवीकरण की नींव डाली जिसकी परम परिणति साम्प्रदायिक दंगों के उदय तथा भारत के विभाजन के रूप में सामने आयी। स्वतंत्रता के बाद राष्ट्रीयता विभाजित होकर हिन्दू और मुस्लिम अस्मिता की आवाज बनते हुए कौमी कट्टरता की ओर अग्रसर होने लगी। इस ध्रुवीकरण से ऊपर उठते सेकुलर मूल्यों को इतिहास लेखन में लाने तथा इतिहास लेखन की इस उभरती हुई प्रवृत्ति को मार्क्सवादी सिद्धान्तबद्ध इतिहास लेखन ने खूब भुनाया। सामंजस्य और विविधता में एकता के स्थान पर जातीय और आर्थिक संघर्षों, धार्मिक द्वन्द्वों, सामन्ती शोषण तथा नगरीकरण के हास में भारतीय अतीत को खोजा जाने लगा। धार्मिक अंधविश्वासों का पर्दाफाश करते हुए तथा सामन्ती जकड़न को हटाने हुए इतिहास को भौतिक संसाधन सम्पन्न एवं भौतिक संसाधन विपन्न लोगों के वर्ग संघर्ष के रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की गयी और यह बताया गया कि इस संघर्ष का सातत्य आज तक दिखता है। वर्तमान भारतीय राजनीति को ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर मार्क्सवादी चोला पहनाने की कोशिश की गयी। इस प्रकार स्वतंत्र भारत के लोकतंत्र में मार्क्सवादी विचारधारा को जनमत का ऐतिहासिक समर्थन दिलाते हुए राजनीति में वामपंथियों के अभ्युदय और सत्ता का मार्ग प्रशस्त किया गया और राष्ट्रनिर्माण के पूर्वगामी एजेण्डे के स्थान पर आर्थिक विकास और भौतिक मूल्यों के प्रोत्साहन का एजेण्डा प्रस्तुत किया गया।

भारत में मार्क्सवादी इतिहास लेखन के उदय के लगभग साथ ही साथ पाश्चात्य विश्व में उत्तर आधुनिकतावादी चिन्तन प्रवृत्तियों का भी उदय हुआ। इसी के साथ ही व्यापक कम्प्यूटरीकरण तथा सूचना क्रान्ति भी आयी। इनके आगमन से पूँजी स्थानान्तरण अत्यन्त तीव्र गति से संभव हो गया जिसके परिणामस्वरूप मल्टीनेशनल कारपोरेशन और कार्टेल्स अपनी आर्थिक अतुलनीय शक्ति के साथ सम्पूर्ण जगत पर छा गये। विश्व का शक्ति सन्तुलन अब केवल सैन्य शक्ति, राजनीति और कूटनीति पर निर्भर नहीं रह गया। विश्व बाजार के ये बड़े खिलाड़ी अब भारत जैसे विकासशील तथा तीसरी दुनिया के संप्रभु किन्तु कमजोर राष्ट्रों के संसाधनों एवं बाजारों को हड़पने की दृष्टि से अपना संजाल फैलाने लगे। कमजोर राष्ट्रों के विकास के लिए विकसित एवं

शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों द्वारा नियंत्रित आई.एम.एफ. और विश्व बैंक जैसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा एक ओर यदि बड़े पैमाने पर लोन के वितरण के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय साहूकारी न केवल एक प्रबल शक्ति के रूप में उभरी अपितु उसने विश्व में नियंत्रित और सीमित विवादों और युद्धों, छाया युद्धों एवं आतंकवादी हमलों को भी भड़काना प्रारम्भ किया। शीतयुद्धकालीन विश्व का दूसरा ध्रुव जो मार्क्सवादी विचारधारा आधारित होते हुए भी वैज्ञानिक साम्यवाद के लक्ष्य की चरम परिणति की ओर बढ़ने के बजाय ऐतिहासिक परिस्थितियों के दबाव में वैचारिक लक्ष्य से भ्रष्ट होकर हथियारों, जासूसी तथा अंतरिक्ष विजय की होड़ में लग गया था अन्तर्राष्ट्रीय साहूकारी और बाजारवाद के उभरते तथा निरन्तर शक्तिशाली होते हुए क्षेत्र में अपने वैचारिक पूर्वाग्रहों पर प्रतिष्ठित टोटैलिटेरियन अर्थव्यवस्था और राज्यवाद के कारण पिछड़ता और कमजोर होता चला गया। अन्ततोगत्वा सोवियत संघ के टूटने के साथ ही विश्व एक ध्रुवीय हो गया, भारत और ऑसियान देशों में सर्विस सेक्टर बूम करने लगा। महंगे सामान की व्यापक खपत के लिए यदि बाजार बनाना है तो क्रय शक्ति भी बढ़ानी होगी। आउटसोर्सिंग और बी०पी०ओ० का संजाल फैलाना होगा। विदेशी पूँजी का निवेश बढ़ाना होगा जिसके प्रभाव से जी.डी.पी. की मामूली बढ़त के बावजूद भी सेंसेक्स 20,000 अंक भी पार कर सकता है। आर्थिक प्रगति का यह अन्तर्विरोधपूर्ण भारतीय परिदृश्य इस देश की आर्थिक समृद्धि के साथ-साथ आधारभूत दुर्बलता का भी आईना है। यह समृद्धि एक झंसा है, एक गुब्बारा है जिसे कभी फोड़कर ऐसा आर्थिक पराभव किया जा सकता है जो सोवियत रूप के पराभव से कम दर्दनाक नहीं होगा जहाँ बीसवीं शताब्दी के अन्तिम कुछ वर्षों में गरीबी की दर 40 प्रतिशत के हिसाब से बढ़ी थी और रूबल की कीमत 25 प्रतिशत रह गयी थी। डालर के विरुद्ध रुपये की बढ़ती मजबूती से लाभ के बजाय हानि के आंकड़े भी इसी ओर इंगित करते हैं।

यह विश्वव्यापी आर्थिक संक्रान्ति भी भारत की उदारीकरण, निजीकरण तथा ग्लोबलीकरण के अनिवार्य लाभों, दुष्परिणामों एवं चुनौतियों को लेकर आयी जो आज भारतीय इतिहास लेखन की सबसे बड़ी चुनौती है और इस चुनौती को स्वीकार करने वाले इतिहासकार ही भारतीय इतिहास के नवीन आयामों का भी सृजन करेंगे।

किन्तु यह संक्रान्ति इतिहास को ही जड़ से उखाड़ फेंकने का तर्क प्रस्तुत कर रही है उसकी उपयोगिता को भी लगभग निरस्त कर चुकी है। कहा जाता है कि उन्सवीं शताब्दी इतिहास की शताब्दी थी, बीसवीं 'साइंस और टेक्नोलॉजी' की और इक्कीसवीं 'नॉलेज' की। नॉलेज कमीशन की स्थापना करके भारत ने भी इस उत्तरआधुनिक शताब्दी में कदम रख दिये हैं। नॉलेज की इस शताब्दी में इतिहास के निरस्त होने का अर्थ है - इतिहास का ज्ञान के क्षेत्र से ही बाहर हो जाना, जबकि बीसवीं शताब्दी ने तो उसे पहले वैज्ञानिक ज्ञान के क्षेत्र से और फिर सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र से ही बाहर कर दिया था। इसलिए इतिहास पहले अपनी रक्षा करे, अपना औचित्य प्रतिपादित करे तथा संक्रान्तिकालीन चुनौतियों और नवीन आयामों की बात करे। अब प्राचीन भारतीयों को इतिहासबोध था या नहीं, इतिहास विज्ञान है या कला, इतिहास अपने को दोहराता है, समस्त इतिहास समसामयिक इतिहास होता है। इतिहास का नायक कौन? शासक, जनसाधारण, एलीट, फोक्सगीस्ट, संस्कृति अथवा संस्थाएँ आदि बहसे बेमानी हो चुकी हैं। संस्कृति अथवा राष्ट्रीय अस्मिता इस बदले हुए परिदृश्य में अब लड़ने-मरने की चीज रह गयी है। तुम हमें खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा। यह चुनौतीपूर्ण नारा अब प्रासंगिक नहीं रह गया है। अब तो कोई व्यक्ति नहीं, बल्कि सम्प्रभु राष्ट्र भी अन्तर्राष्ट्रीय फण्डिंग एजेन्सीज से विकास के बड़े ऋण के पैकेज में संभालकर रखी गयी गुलामी को स्वेच्छा से सिर माथे पर चढ़ा कर लाते हैं और उस पर गर्व करते हैं। वह गुलामी ही अच्छी जिससे विकास होता है, करोड़ों के फ्लाइओवर और पार्क बनते हैं, स्ववित्तपोषित कॉलेज कुकुरमुते की तरह फैलकर उच्च शिक्षा का विकास करते हुए केवल निरक्षरता दूर कर पाते हैं। क्या होगा उस आजादी का और उसके बदले खून देने का जब विकास ने लोगों में घूस देकर उच्च शिक्षा पाने, नौकरी पाने, कोटा परमिट और असलहों के लाइसेन्स आदि पाने की क्षमता आम आदमी के काफी बड़े हिस्से में पैदा कर दी है। और तो और, राजनेताओं के लिए भीड़ जुटाने का भी पैसा मिलता है और भीड़ में जुटने वाली जनता को भी, उसमें छोटा ही सही, शेयर मिलता है। संस्कृति? संस्कृति नाच-गान और फन में अलग-अलग अन्दाजों का नाम ही तो है। मजे लो, चटखारे लगाओ संस्कृतियों का आस्वादन करो स्वाद बदलो। क्यों लड़ते मरते हो पागलों की तरह। मॉल्स

और अण्डरवर्ल्ड खोल तो दिये है स्वर्गतुल्य उपभोग के द्वार ने ईट, ड्रिंक एण्ड बी मेरी। यही मूल्य हैं, यही सुख के सोपान हैं।

योजनायें पहले ऐतिहासिक नजरिये से बनती थीं जिसमें पिछली भूलों से सीखने और उनके लिये जिम्मेदार लोगों को उसके लिये उत्तरदायी भी बनाने के लिए पर्याप्त अवकाश हुआ करता था। लेकिन अब तो सारी योजनायें सांख्यिकी और मॉडल्स की मोहताज है जिसमें पीछे मुड़कर देखने का प्रश्न ही नहीं पैदा होता है और रस्म अदायगी के तौर पर यदि देख भी लिया गया तो गलतियों की जिम्मेदारी किसी पर डाली ही नहीं जाती। ऐतिहासिक विवेचन का यह व्यावहारिक पहलू भी एक तरह से निरस्त हो गया है।

इतिहास की मुख्य भूमि 'तथ्य' को प्राचीन भारतीय मनीषा इसलिए निरस्त कर चुकी थी कि व्यावहारिक जीवन के अस्तित्ववादी धरातल के सभी प्रश्न इतिहास के तथ्यात्मक विश्लेषण से व्याख्यायित नहीं होते। उससे कहीं अधिक वे पुनर्जन्म के दार्शनिक- धार्मिक सिद्धान्त से व्याख्यायित हो जाते हैं। इससे कम से कम आस्थाजन्य मूल्यवत्ता और मूल्यवत्ताजन्य आस्था का चक्रानुक्रम तो पैदा होता है। वैज्ञानिक ज्ञान और तदजन्य तकनीक पर आरूढ़ उत्तरआधुनिक मनीषा भी ऐतिहासिक तथ्य की विश्वसनीयता और प्रामाणिकता पर उंगली उठाते हुए उसे सरवाइविंग मेमोरी की खण्डित कड़ियाँ मानते हुए निरस्त करती है। इतिहास एक नैरेटिव (कथा) है, उपमा, रूपक, साइनेक्डोशी जैसे अलंकारों से गुम्फित एक ऐसी गल्प जो वैज्ञानिकता का भ्रामक दावा पेश करती है। इतिहास अतीत की प्रामाणिक झँकी नहीं अपितु एक कथाबिम्ब है जो देशकाल की वास्तविकता का सम्मान तो करता है लेकिन इसके कथा प्रवाह में पूर्वाग्रहों, वाग्जालीय संरचनाओं और अलंकारिक युक्तियों तथा मनमोहक, भयावह और अदालतीय निर्णय की तरह का दोष मढ़ने वाले प्रसंगों की भरमार होती है। विचारधारयें भी इतिहास का बाना पहनकर अपना निहितार्थ सिद्ध करती हैं। यह साहित्य फिल्म और टी.वी. सीरियल की तरह मन बहलाने वाले उपक्रम से अधिक कुछ भी नहीं है।

इतिहास के सामने एक बड़ी चुनौती अतीत का इतिहासवादी तथा कर्मकाण्डीय प्रस्तुतीकरण है। अतीत का इतिहासवादी प्रस्तुतीकरण, प्रधान ऐतिहासिक परिवर्तनों को या तो द्वन्द्ववादी विश्लेषण के माध्यम से एक विश्वव्यापी अनिवार्यता बना देता है या कार्य कारण संबंधों के माध्यम से उनकी व्याख्या करता है। एक द्वन्द्ववादी विश्लेषण इतिहास को एक ऐसा एजेण्डा प्रदान करता है जो परिवर्तनों की चरम परिणित तक न केवल पूर्व निर्धारित है अपितु उन्हें क्रान्तिकारी गतिविधियों के माध्यम से वहाँ तक अपेक्षाकृत कम समय में पहुँचाया जा सकता है। दूसरा, परिवर्तन जो घटित हो गया वही पूर्व निर्धारित था यह बताते हुए इतिहास को यथास्थितिवाद का सतत समर्थक बना देता है। दोनों ही प्रकार की द्वन्द्ववादी व्याख्यायें वैश्विक हैं और क्रमशः इतिहास को ऐतिहासिक भौतिकवादी और प्रत्ययवादी दर्शनों के शीशे में उतारती हैं। कार्यकारण सम्बन्धों की तथ्यपरक व्याख्या इतिहास में तथ्य को केवल तथ्य के महत्व की, तथा ऐतिहासिक व्याख्या के निरपेक्ष एवं वस्तुनिष्ठ सिद्धान्तों की दुहाई देते हुए इतिहास के एजेण्डे को ओपेन-एण्डेड रखने की चेष्टा करती है। द्वन्द्ववादी व्याख्याओं की प्रतिक्रिया में यदि उत्तरआधुनिकतावादी दार्शनिक प्रवृत्तियों का उदय हुआ तो ऐतिहासिक व्याख्या में ओपेन-एण्डेड एजेण्डे की प्रतिक्रिया में होलोकास्ट डिनायर्स तथा इतिहास की कर्मकाण्डीय अवधारणा का उदय हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध में यहूदियों के विरुद्ध जिस होलोकास्ट की बात करते हुए उसके औचित्य को इतिहास में ऐतिहासिक विश्लेषण की पद्धति से प्रतिपादित किया गया है, होलोकास्ट डिनायर्स उसका उसी पद्धति से प्रतिवाद करते हैं। किन्तु उनके तर्कों का उत्तर देने के बजाय उनकी कृतियों को इतिहासकार अस्पृश्य मानते हुए उनकी अवहेलना करते हैं और अमेरिका के सुप्रीमकोर्ट में उन पर मुकदमा चलाते हैं। दूसरी ओर यहूदी होलोकास्ट की स्मृति को अक्षुण्ण तथा चिरन्तन बनाने के उद्देश्य से उन कभी न भूलने वाली तिथियों पर सामूहिक विषाद के प्रदर्शन का वर्ष प्रतिवर्ष कर्मकाण्डीय कार्यक्रम करते हैं जैसे शिया लोग मुहर्रम पर, यद्यपि उनका तरीका मुहर्रम से भिन्न होता है। कर्मकाण्डीय तरीके से अतीत की स्मृतियों को सुरक्षित करने का तरीका रामलीला जैसे आयोजन भी है। भारत के औपनिवेशिक इतिहास लेखन के प्रत्युत्तर में एक ओर यदि राष्ट्रीय इतिहास लेखन उभारा गया तो दूसरी ओर सबआल्टर्न इतिहास लेखन जो ऐतिहासिक स्रोतों में अदालती मुकदमों के दस्तावेजों, जंगलात कानूनों और दंगे की रिपोर्टें जैसे दस्तावेज भी शामिल करते हैं। लेकिन इतिहास को ही निरस्त करने वाली उत्तरआधुनिक

चिन्तन की प्रवृत्तियाँ तथा बाजारवादी भौतिकता का भूमण्डलीय उत्कर्ष उसके समक्ष सबसे बड़ी चुनौतियाँ हैं जो समस्त मूल्यों को भौतिक मूल्यों और रूपों में उनकी कीमतों को बदलकर रख देती हैं।

भारतीय इतिहास लेखन के नवीन आयाम इन चुनौतियों के बावजूद उसके औचित्य और उपयोगिता का प्रतिपादन पर निर्भर करते हैं। हमें यह सोचना होगा कि इतिहास के अभाव में ऐसा क्या है जिसकी जरूरत हमें महसूस होगी। दूसरे शब्दों में वह कौन सी कमी है जो इतिहास के अलावा किसी दूसरे साधन से दूर नहीं की जा सकती। मेरे विचार से वर्तमान युग में वैज्ञानिक दृष्टि ने ज्ञान की सभी दृष्टियों पर कब्जा कर लिया है और यह दृष्टि भी संकुचित होते-होते टेक्नोलॉजी की दृष्टि से सिमटती जा रही है। संकुचन, विशिष्टीकरण (स्पेशलाइजेशन), वर्गीकरण तथा प्रतिमानिकरण (मॉडलिंग) वैज्ञानिक ज्ञान की प्रमुख विशेषतायें हैं। समग्रता में चीजों को देखना विज्ञान की प्रकृति नहीं है। वह वर्गीकृत खण्डों के मैक्रो एवं माइक्रो स्तरों पर डेटा के विशिष्ट आधार पर समग्रता को पाने की कोशिश करता है। इतिहास और साहित्य के अतिरिक्त ज्ञान की कोई ऐसी विधा नहीं है जो जनसामान्य की भाषा में और उसकी समझ के धरातल पर मनुष्य को, समाज को, राजनीति को, संस्थाओं एवं संस्कृतियों को उनकी समग्रता में, एक दूसरे के तारतम्य में प्रस्तुत करने की क्षमता रखती हो। साहित्य यदि देश, काल निरपेक्ष कल्पना की उड़ानों के रुचिकर माध्यमों से वास्तविक स्थितियों के सहकार और तारतम्य की झलकियाँ प्रस्तुत करता है तो इतिहास देश, काल सापेक्ष तथ्यात्मक वास्तविकता की भूमि पर प्रत्यक्ष तथा उसमें अन्तर्निहित शक्तियों के तारतम्य और गतिविधियों को यथासम्भव उजागर करने की चेष्टा करता है। समग्रता ऐतिहासिक दृष्टि की विशेषता है। स्थिति कुछ निम्नवत है जो ज्योतिष के सम्बन्ध में कही गयी उक्ति को प्रकाशित होती है-

फलानि ग्रह चारेण प्रवदन्ति मनीषिणः।

को वक्ता तारतम्यस्य साक्षात्वेधसा बिना॥

अर्थात् विद्वान लोग फलों का प्रवचन ग्रहों की चाल के आधार पर करते हैं किन्तु समूचे तारतम्य का प्रवचन साक्षात् ब्रह्म के बिना भला कौन कर सकता है। जगत के अस्तित्ववादी स्तर पर जहाँ इरादों और मनोरथों, बेबसी और शक्तिमत्ता, षडयंत्र और सहजता की जंग हर समय और हर स्तर पर चल रही हो और सब मिल कर विश्वरूपी विशालतम कड़ाह में लगातार उबाल ले रही हों वहाँ इतने उलझे हुए, निरन्तर गतिशील और अनन्त आयामी यथार्थ को उसकी समग्रता में इतिहास की सीमाओं के अन्तर्गत ही व्याख्यायित किया जा सकता है। खण्डित वैज्ञानिक विवेचन के लिए तो जीवन के जीवन्त अस्तित्व से उसे काटकर अथवा क्रेज और विज्ञापन की एनिस्थीसिया के प्रभाव से मानव एवं जनसमुदायों को उसकी सहज समझदारी से संज्ञाशून्य कर के ही किया जा सकता है। वार्ता की प्राथमिक किन्तु वैज्ञानिक परिभाषा तो अपनी नितान्त स्पष्टता के साथ कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलती है। “कृषि पशुपाल्य वाणिज्या इति वार्ता” अर्थात् कृषि पशुपालन और वाणिज्य वार्ता है किन्तु अस्तित्व के समग्र धरातल पर इसकी व्यापकता का अनुमान युधिष्ठिर द्वारा दिये गये यक्ष प्रश्न “का वार्ता?” अर्थात् वार्ता क्या है? के उत्तर से लगाया जा सकता है। उत्तर है-

अस्मिन् महामोहमये कटाहे सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन।

मासैर्तु दर्वी परिघट्नेन भूतानि कालः पचतीति वार्ता।

अर्थात् इस संसार रूपी महामोहमय कड़ाह में जिसके नीचे सूर्य रूपी अग्नि जल रही है तथा रात और दिन उस अग्नि में ईंधन के रूप में गुजर रहे हों काल महीनों और ऋतुओं के कर्छुले से चला चलाकर प्राणियों को पका रहा है, यही वार्ता है। अस्तित्व के धरातल पर चल रहे घटनाक्रम का तारतम्य अपनी समग्रता एवं सम्पूर्णता में कुछ इसी तरह आभासित होती है जिसको इतिहास अपनी समस्त सीमाओं एवं कमियों के बावजूद देशकाल सापेक्ष तथ्य विश्लेषण के माध्यम से यथासाध्य समग्रता में प्रस्तुत करता है।

अब प्रश्न उठता है कि इतिहास की इस समग्र दृष्टि की आवश्यकता एवं उपयोगिता ही भला क्या है जब वैज्ञानिक दृष्टि से एकत्र किये गये खण्ड सापेक्ष डेटा उपलब्ध है और खण्डों को एक-दूसरे से जोड़कर समग्रता तक पहुँचा जा सकता है? किन्तु यह समग्रता उस अस्तित्वपरक समग्रता का अंश मात्र है जिसका उल्लेख

युधिष्ठिर द्वारा उपर्युक्त यक्ष प्रश्न के उत्तर में किया गया है। विज्ञान की फितरत है, अस्तित्व के उन पहलुओं को काटकर फेंक देना जो उसके द्वारा पूछे गये प्रश्नों के साँचे में नहीं आते। प्रश्नों के उत्तर से उन पहलुओं को काटा जा सकता है परन्तु जीवन के अस्तित्ववादी समग्रता से नहीं। वहाँ तो वे रहेंगे ही। केवल उनकी नोटिस नहीं ली जायेगी। आँख पर पट्टी बाँधकर न्याय की तुलना में साक्ष्यों को तौलकर वैज्ञानिकतापूर्ण वस्तुनिष्ठता से न्याय करने की परिपाटी साक्ष्यों को षडयंत्रपूर्वक गढ़ने और गलत साक्ष्यों के आधार पर निर्णय करवाने को भी नजरन्दाज करने का मार्ग प्रशस्त करता है। भावनात्मकता अथवा सब्जेक्टिविटी के पूर्णतया निरस्त होने पर अस्तित्व के धरातल पर आदमी अधूरा हो जाता है। श्रम पूँजी में बदल कर आदमी की नैसर्गिक विशेषता को समाप्त कर देता है और उसी के विरुद्ध बाजार में बलात् शोषण के हथियार के रूप में इस्तेमाल होने लगता है। आदमी का आपा उसकी अस्मिता उसके बाहर निकल जाती है तो वह आत्मविहीन निरर्थकता मात्र रह जाता है और उसका एलियनेशन हो जाता है। प्रश्नों के दायरे ज्ञान को पूर्व निर्धारित सीमाओं में बाँध देते हैं जिससे उसकी समग्रता नष्ट हो जाती है। एकत्र किये जाने वाले डेटा का क्षेत्र विस्तार और सैम्पुल साइज पूर्व निर्धारित होते हैं। ज्ञान ओपेन एण्डेड नहीं रह जाता। समग्रता के विशिष्टता के संकुचित क्षेत्र में सिकुड़कर रह जाने से सामान्य कहीं खो जाता है और विशिष्टताओं के योग से उभरी समग्रता सामान्यविहीन, संवेदनविहीन और आत्मगौरवविहीन समग्रता मात्र बनकर रह जाती है।

इतिहास को वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता का पर्याय बनाने के प्रयास वाले सिद्धान्तों से इतिहासवाद की उत्पत्ति होती है जिससे या तो टोटेलिटेरियन (अधिनायकवादी) व्यवस्था को समर्थन मिलता या फिर औपनिवेशिक अथवा यथास्थितिवादी व्यवस्था को। लोकतांत्रिक पूँजीवाद के भूमण्डलीय स्वरूप के अन्तर्गत विकास के लिए की जाने वाली प्लानिंग के मात्र एक उदाहरण से इतिहास की उपयोगिता इंगित की जा सकती है।

डेटा के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि 85 प्रतिशत इंजीनियर एवं अन्य प्रोफेशनल अधिकांशतः दक्षिण भारत के प्राइवेट कॉलेजों से सातवीं-आठवीं पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत निकले थे यद्यपि उन्होंने कई-कई लाख कैपिटेशन फीस लेकर दाखिले किये थे। इसलिये नवीं-दसवीं पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत उत्तर भारत में भी अधिक से अधिक प्राइवेट कालेज खोलने की नीति अपनायी गयी। इस नीति का एक लक्ष्य निजी पूँजी को उच्च शिक्षा के विकास में कैपिटेशन फीस का लालच देकर निवेशित करवाना भी था। माननीय उच्चतम न्यायालय ने पी0ए0 इनामदार केस में तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा को चैरिटी तथा व्यवसाय के दो दायरों में सीमित करते हुए एक ऐसा निर्णय दिया जिसके अनुसार शिक्षा के व्यवसायी को अपनी मेहनत और पूँजी निवेश के बदले में कम से कम उसका मेहनताना बचना चाहिए। किन्तु इस व्यवसाय से होने वाले अतिरिक्त लाभ को अन्यत्र निवेशित न कर के शिक्षा में ही निवेशित किया जाना चाहिए तथा कैपिटेशन फीस के माध्यम से होने वाले छात्रों के शोषण को समाप्त करते हुए माननीय न्यायालय ने कहा कि दाखिले शोषण मुक्त तथा सिंगिल विण्डो सिस्टम से होने चाहिए। लेकिन समान फीस के पूर्व प्रचलित सिद्धान्त को खण्डित करते हुए इस केस के माननीय न्यायाधीशों ने फीस को कालेज में किये गये निवेश के अनुपात में अलग-अलग निर्धारित करने की व्यवस्था दी जिसका व्यवहार में उल्लंघन हुआ क्योंकि उत्तर भारत के अनेक निजी कालेजों ने बड़ी हुई फीसों के साथ भी अवैध रूप से अतिरिक्त (कैपिटेशन) फीस वसूली। सॉफ्टवेयर तथा फार्मैसी इण्डस्ट्री में मिलने वाले ऊंचे वेतनों के लालच में समस्त योग्य छात्र शिक्षण का व्यवसाय छोड़कर उद्योगों में चले गये जिससे शिक्षकों का एकाएक अभाव हो गया। बी0टेक0 पास, बी0टेक0 को तथा बी0एड0 पास बी0एड0 को पढ़ा रहा है जिससे तकनीकी उच्च शिक्षा 'सब-स्टैंडर्ड' हो गयी और उससे निकलने वाले 70 प्रतिशत स्नातक नौकरी के काबिल ही नहीं रह गये।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ऐक्ससेस, इक्विटी और इन्क्लूजन का राग अलापते हुए ग्रॉस इनरोलमेन्ट रेशियो को 10 से 15 प्रतिशत पर लाने का लक्ष्य रखते हुए और अधिक प्राइवेट कॉलेज खोलने की बात की जा रही है। इस बात को पूरी तरह नजरअन्दाज किया जा रहा है कि उत्तर भारत में तकनीकी उच्च शिक्षा के ढेर सारे कालेजों की बाढ़ जाने आने से दक्षिण भारतीय कॉलेजों की लगभग 30 प्रतिशत सीटें नहीं भर रही है। उत्तर भारतीय कॉलेजों की भी सभी सीटें नहीं भर पा रही है और ऊंची अवैध कैपिटेशन फीस

योग्यताक्रम में कमतर छात्रों को दाहिने-बायें से भरती करने के हथकण्डे से ही अर्जित हो पा रही है। तकनीकीशिक्षा के स्तर में आने वाली भयंकर गिरावट के जवाब में कहा जा रहा है कि “सब-स्टेण्डर्ड एजुकेशन इज बेटर दैन नो एजुकेशन” अर्थात् निम्न स्तरीय शिक्षा, कोई भी शिक्षा न देने से बेहतर है। यह बयान इस बात को पूरी तरह नजरअन्दाज कर रहा है कि 70 प्रतिशत तकनीकी स्नातक और विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार 90 प्रतिशत सामान्य विषयों के स्नातक निम्नस्तरीय शिक्षा का स्पर्श पाकर न तो नौकरी के काबिज रहे और न मेहनत मजदूरी के काबिल। भारतीय समाज में परम्परागत जीवन मूल्यों से इस निम्नस्तरीय शिक्षा स्पर्श पाते ही उनकी आस्था समाप्त हो गयी और अब वे चाहे-अनचाहे आर्मी ऑफ करप्शन, अण्डरवर्ल्ड, क्राइम, पॉवर पॉलिटिक्स के अंग बनते चले जा रहे हैं। साइबर क्राइम तथा आतंकवाद की ओर भी उनका झुकाव होता चला जा रहा है। इतिहास की समग्र दृष्टि से रखकर देखे बिना इन प्रवृत्तियों और संभावनाओं की दृष्टि से न तो ग्यारहवीं शैक्षिक योजना में अपनायी जा रही नीतियों का सही आंकलन तक किया जा सकता और न ही उनसे इस देश और राष्ट्र को बचाया ही जा सकता है। दूसरा दुष्परिणाम यह है कि प्लानिंग करने वालों की कोई एकाउण्टेबिलिटी नहीं रह जाती। उच्च तकनीकी शिक्षा के लिए इतने अधिक निजी कालेज पहले तो इसलिए खोले गये क्योंकि उनसे निकलने वाले स्नातकों की खपत देश-विदेश के उद्योगों और कॉलेज शिक्षकों के रूप में बड़े पैमाने पर होने लगी थी। अब निम्नस्तरीय शिक्षा के कारण जब 70 प्रतिशत तकनीकी स्नातक नौकरी के काबिल नहीं रहे तो ग्रॉस इनरोलमेन्ट रेशियो को 10 प्रतिशत से 15 प्रतिशत बढ़ाने के लिए और भी अधिक निजी कॉलेज खुलने चाहिए जिससे प्रचलित से भी अधिक निम्न स्तरीय पढ़ाई का मार्ग स्वतः प्रशस्त हो जायेगा। तकनीकी शिक्षा का स्तर सुधारने के लिए हर सम्भव प्रयास किये जायेंगे। आई0एस0आई0 मार्क की तरह कुछ संस्थाओं पर गुणवत्ता का ठप्पा भी लगाया जायेगा जिससे कि उनकी डिग्रियाँ महंगे दामों में बिकें। यह सब जानते हैं कि वे संस्थायें इस ठप्पे को प्राप्त करने के लिए घूसखोरी से लेकर फरेब तक कोई भी हथकण्डा अपनाने से बाज नहीं आयेंगी। तकनीकी शिक्षा विभिन्न गुणवत्ता और कीमतों वाला बाजारू माल बनकर रह जायेगी तो जेब में पैसों के हिसाब से निजी तकनीकी एवं व्यावसायिक कॉलेजों द्वारा ग्राहकों को उपलब्ध करायी जायेगी। सभी प्रमाणपत्र आला दर्जे के होंगे भले ही प्रमाणपत्र में प्रमाणित योग्यता उनके धारकों में न हो।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय इतिहास लेखन को आज के राष्ट्रीय और भूमण्डलीय परिवेश में प्रासंगिक होने के लिए उन नयी चुनौतियों का सामना करना होगा जिनका उदाहरण के तौर पर कुछ संकेत इस अत्यन्त संक्षिप्त वक्तव्य में दिया गया है। इसके लिए उसे अपने को अपनी नैसर्गिक समग्रता की दृष्टि के अनुरूप नये आयाम विकसित करने होंगे। अपने को विज्ञान अथवा समाज विज्ञान की कोटि में लाना अब इतिहास लेखन की चुनौती नहीं रह गयी है क्योंकि इस चुनौती को स्वीकार करते हुए अपने रूपान्तरित करने के प्रयास में ही इतिहास की समग्र दृष्टि की हत्या हुई है जिसकी चरम परिणति उत्तरआधुनिकतावादियों के हाथों डिकान्स्ट्रक्शन थी। इसके पहले इतिहासवादी प्रवृत्तियों का जन्म इतिहास पर वैचारिक पूर्वमान्यताओं और सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं समाजार्थिक परिवर्तनों की अधिनायकवादी, औपनिवेशिक राष्ट्रवादी, अथवा साम्प्रदायिक महत्वाकांक्षाओं को अधिरोपित करने के प्रयासों में हुआ। भारतीय इतिहास लेखन को इनसे सावधान रहते हुए इतिहास की अपनी मूलभूमि समग्रता एवं अस्तित्वपरकता के व्यापक आयाम को पहचानना होगा जो भूमण्डलीय धरातल से भी अधिक व्यापक और अस्तित्व की संवेदनाओं से भी अधिक सूक्ष्म और संवेदनशील है।